आइजिक ऐसिमोव

हमने फोटोसिंथेसिस के बारे में कैसे जाना?
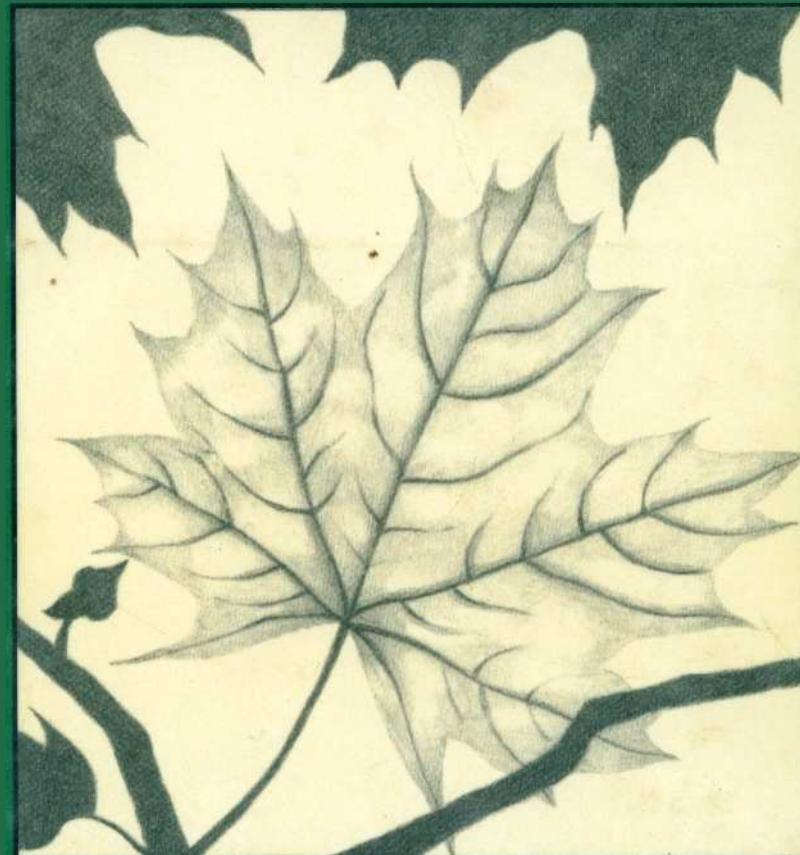
हिंदी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

HOW DID WE FIND OUT ABOUT PHOTOSYNTHESIS?

By: Isaac Asimov

Hindi Translation : Arvind Gupta

1 ऑक्सीजन

हम सब लोग सांस लेते हैं। हम अपने फेंफड़ों में हवा अंदर खींचते हैं और बाद में उसे नाक से बाहर छोड़ते हैं।

जिस हवा का हम उपयोग करते हैं उसमें 1/5 वां हिस्सा ऑक्सीजन का होता है। हम बस ऑक्सीजन के अणुओं का इस्तेमाल करते हैं। इस ऑक्सीजन को हम शरीर में मौजूद कार्बन और हाईड्रोजन से मिलाते हैं। कार्बन, ऑक्सीजन के साथ मिलकर कार्बन-डाईऑक्साइड बनती है और हाईड्रोजन, ऑक्सीजन के साथ मिलकर पानी बनता है।

जब हम बाहर सांस छोड़ते हैं तो हमारे फेफड़ों की हवा में ऑक्सीजन की मात्रा कुछ कम हो जाती है। हम सांस द्वारा कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी की भाप बाहर छोड़ते हैं। सांस लेने की यह प्रक्रिया 'रेसपिरेशन' कहलाती है। लैटिन के इस शब्द के मतलब होते हैं 'बार-बार सांस लेना'।

हम हमेशा सांस लेते रहते हैं। सभी मनुष्यों और जानवरों को भी ऐसा करना पड़ता है। मनुष्य और जानवर लाखों-करोड़ों सालों से इसी प्रकार सांस ले रहे हैं। फिर अब तक ऑक्सीजन खत्म क्यों नहीं हुई? ऑक्सीजन की जगह कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी ने क्यों नहीं ले ली?

और फिर शरीर में उन तत्वों का क्या हुआ जो कार्बन और हाईड्रोजन उपलब्ध कराते थे? सांस लेते समय वे ऑक्सीजन के साथ मिलकर खत्म क्यों नहीं हुए?

हम जो भोजन करते हैं उससे शरीर में लगातार कार्बन और हाईड्रोजन की आपूर्ति होती रहती है। परन्तु भोजन में कार्बन और हाईड्रोजन कहां से आते हैं? हम विभिन्न प्रकार के पौधों के फल और सब्जियां खाते हैं। हम बहुत से जानवरों गाय, बकरी, मुर्गी का मांस भी खाते हैं। यह जीव अन्य पौधे खाकर जिन्दा रहते हैं। अंततः सारा कार्बन और हाईड्रोजन पौधों से आता है। किसी न किसी रूप में दुनिया के सभी जीव पौधों पर ही निर्भित और जिन्दा हैं।

परन्तु फिर पौधों में कार्बन और हाईड्रोजन कहां से आता है? पौधे तो कुछ नहीं खाते?

यह दो बड़े प्रश्न हैं - हमारे सांस लेने से सारी हवा क्यों नहीं खत्म हो जाती? हमारे खाने से सारा भोजन क्यों नहीं खत्म हो जाता है?

हवा की अपेक्षा पौधों का अध्ययन करना कहीं ज्यादा आसान है। आप

कम-से-कम पौधों को बड़ा होते हुए देख तो सकते हैं। पौधे बढ़ेंगे नहीं अगर आप उन्हें मिट्टी में बोने के बाद उन्हें पानी से नहीं सीचेंगे। ऐसा लगता है कि मिट्टी और पानी, दोनों से पौधों के विकास का पदार्थ बनता होगा।

1643 में बेल्जियम के एक वैज्ञानिक जैन बैप्तिस्ता फॉन हेल्मोन्ट (1577-1644) ने इस बारे में कुछ प्रयोग किए। उसने मिट्टी की एक निश्चित मात्रा का वजन किया और फिर उसमें एक मजनू (विलो) का पेड़ लगाया। उसने गमले को अच्छी तरह ढंक कर रखा जिससे उसके द्वारा पानी के अलावा उसमें कोई अन्य चीज न जाए। उसने पांच साल तक पेड़ को पानी से सींचा। बाद में उसने उसे उखाड़कर उसकी जड़ों की सारी मिट्टी को सम्भालकर गमले में वापिस डाला।

उसने पाया कि मजनू का पेड़ अब 146-पाउंड का हो गया था जबकि मिट्टी के वजन में सिर्फ 2-आउंस की कमी आई थी। उसे लगा कि मिट्टी से नहीं बल्कि पानी से पौधों ने अपने विकास के लिए पदार्थ बनाया होगा।

हेल्मोन्ट के जमाने में लोगों को यह नहीं पता था कि विभिन्न पदार्थों में अलग-अलग अणु होते हैं। हेल्मोन्ट को यह भी नहीं पता था कि पानी में सिर्फ ऑक्सीजन और हाईड्रोजन के अणु होते हैं जबकि पौधों में ऑक्सीजन और हाईड्रोजन के अलावा कार्बन के अणु भी होते हैं।

परन्तु मिट्टी और पानी के अलावा अन्य चीजों ने भी मजनू के पेड़ को छुआ था। पेड़ को निश्चित रूप से हवा ने स्पर्श किया था पर हेल्मोन्ट ने हवा के असर को शामिल नहीं किया। उस जमाने में सभी लोग ऐसा ही करते थे। क्योंकि हवा को कोई देख या छू नहीं सकता था, इसलिए लोग हवा के रोल को नजरंदाज करते थे।

हेल्मोन्ट ने हवा का अध्ययन भी किया पर मजनू के पेड़ के संदर्भ में नहीं। वो पहले व्यक्ति थे जिन्हें हवा अलग-अलग प्रकार की लगी। क्योंकि हवा अदृश्य और आकारहीन होती है इसलिए हेल्मोन्ट को हवा यूनानियों की 'केऑस' जैसी लगी - मिलीजुली और बिना किसी आकार वाली। हेल्मोन्ट की भाषा में उस शब्द उच्चारण 'गैस' था। इसलिए आज भी हवा जैसी चीजों को हम गैस बुलाते हैं।

हेल्मोन्ट ने पाया कि लकड़ी जलने पर जो गैस बनती थी वो हवा से बहुत अगल थी। इस गैस में चीजें हवा जैसे जल्दी जलती नहीं थीं। यह नई गैस आसानी से पानी में घुल जाती थी, जब कि साधारण हवा पानी में नहीं घुलती थी। हेल्मोन्ट ने जिस गैस का अध्ययन किया उसे आज हम कार्बन-डाईऑक्साइड के नाम से जानते हैं।

Jan Baptista van Helmont

जैन बैप्तिस्ता फॉन हेल्मोन्ट

बाद में पता चला कि कार्बन-डाईऑक्साइड गैस पौधों के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है परन्तु हेल्मोन्ट को इसके बारे में पता नहीं था।

उसके बाद अन्य वैज्ञानिकों की भी गैसों में रुचि पैदा हुई। ब्रिटिश वैज्ञानिक स्टीफिन हेल्स (1677-1761) ने उनका विस्तार से अध्ययन किया। 1727 में उन्हें लगा जैसे पौधों के विकास में किसी गैस का योगदान हो। परन्तु उन्हें निश्चितता से उस विशिष्ट गैस का पता नहीं चल पाया।

फिर 1756 में एक अन्य ब्रिटिश वैज्ञानिक जोजफ ब्लैक (1728-1799) ने कार्बन-डाईऑक्साइड का अध्ययन किया और पाया कि वो लाईम (चूने) के खनिज के साथ मिलकर लाईमस्टोन बनाती है।

बाद में उसने पाया कि लाईम को कार्बन-डाईऑक्साइड के विशेष वातावरण में रखने की जरूरत नहीं थी। चूने को सिर्फ हवा में रखने ही भी उसमें वही बदल दिखाई देती। इसका मतलब साधारण हवा में भी कार्बन-डाईऑक्साइड थी, चाहें उसकी मात्रा बहुत कम ही क्यों न हो।

1772 में एक अन्य ब्रिटिश वैज्ञानिक अर्नेस्ट रदरफोर्ड (1749-1819) ने मोमबत्ती को हवा के एक बंद डिब्बे के अंदर जलाया। कुछ देर बाद मोमबत्ती ने जलना बंद किया और वो बुझ गई। उस समय तक यह पता था कि जलती मोमबत्ती कार्बन-डाईऑक्साइड पैदा करती है। इससे लगा जैसे मोमबत्ती ने सारी

हवा उपयोग की हो और उसके स्थान पर कार्बन-डाईऑक्साइड गैस छोड़ी हो।

वैसे कार्बन-डाईऑक्साइड कुछ रासायनों के साथ जुड़ती है। बर्तन में भरी गैस में कुछ रासायनों को डालकर रदरफोर्ड ने सारी कार्बन-डाईऑक्साइड से छुटकारा पाया। पर तभी भी बर्तन में बहुत सारी गैस बची थी पर अब एस गैस में मोमबत्ती नहीं जली।

अंत में रदरफोर्ड इस निर्णय पर पहुंचा कि हवा में कार्बन-डाईऑक्साइड के अलावा कोई और गैस भी थी जिसमें चीजें जलती नहीं थीं। अंत में इस गैस का नाम नाईट्रोजन पड़ा।

फिर 1774 में एक अन्य ब्रिटिश वैज्ञानिक जोजफ प्रीस्टले (1733-1804) ने हवा में एक अन्य गैस को खोजा जिसमें चीजें बहुत तेजी से जलती थीं। अगर इस गैस में किसी सुगलती लकड़ी को लाया जाता तो उसमें एकदम आग की लपटें पैदा हो जातीं। इस गैस का अंत में नाम ऑक्सीजन पड़ा।

अंत में 1775 में एक फ्रेंच वैज्ञानिक अंतोन लौरेन्ट लौवोसिए (1743-79) ने इन सारी जानकारियों को एकत्रित किया। उसके अनुसार हवा दो गैसों का मिश्रण थी - उसमें 4/5 भाग नाईट्रोजन और 1/5 भाग ऑक्सीजन का था। ऑक्सीजन के कारण ही चीजें हवा में जलती थीं और उसकी ही वजह से सारे प्राणी - मनुष्य और जानवर जिन्दा रहते थे। (वैसे हवा में 1/300 वां भाग कार्बन-डाईऑक्साइड का भी होता था)।

Antoine Lavoisier **अंतोन लौवोसिए**

उसके बाद लौवोसिए ने एक अहम प्रश्न पर शोध किया: पृथ्वी पर प्राणियों के लगातार सांस लेने और हमेशा आग जलने से ऑक्सीजन खत्म क्यों नहीं हुई और उसका स्थान कार्बन-डाईऑक्साइड ने क्यों नहीं लिया? अगर ऐसा होता तो सारे जीवित प्राणी मर जाते और कोई भी वस्तु नहीं जलती। परन्तु इसके बावजूद प्राणी सांस लेते रहे, चीजें जलती रहीं और साथ-साथ हवा में भी काफी मात्रा में ऑक्सीजन भी बनी रही।

ऐसा लगता था जैसे ऑक्सीजन उपयोग होते ही कहीं से उसकी भरपाई हो जाती थी। पर कैसे?

इस प्रश्न का शुरुआती जवाब प्रीस्टले के शोध से मिला। 1771 में प्रीस्टले ने डिब्बे में बंद हवा में एक चूहा रखा। कुछ समय बाद चूहे की सांस ने हवा की सारी ऑक्सीजन खत्म कर दी और जो बची उस पर वो जीवित नहीं रह पाया और मर गया।

जोजफ प्रीस्टले Joseph Priestley

क्या पेड़ भी ऐसे बंद डिब्बे में मर जाएंगे? प्रीस्टले ने अचरज किया। उसने डिब्बे में से मरे चूहे को निकाला। फिर उसमें एक पानी की कटोरी में पुदीने की नन्हा पौधा रख कर उसे डिब्बे में बंद किया।

वो नन्हा पौधा नहीं मरा। पौधा बंद डिब्बे में महीनों भली-भांति जीवित रहा। उसके अलावा बाद में प्रीस्टले ने उस डिब्बे में जब एक चूहे को छोड़ा तो वो भी बड़े आराम से उछलता-कूदता रहा। मजे की बात यह कि उस डिब्बे में मोमबत्ती भी जलती रही।

जो कुछ हुआ वो प्रीस्टले को समझ में नहीं आया क्योंकि तब तक ऑक्सीजन का आविष्कार नहीं हुआ था। परन्तु जब लौवोसिए ने हवा की प्रकृति पर प्रकाश डाला तब सब कुछ साफ हो गया। जब प्राणी हवा की ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं तो पेड़ उसकी आपूर्ती करते हैं। इसलिए जब तक पृथ्वी पर पेड़ रहेंगे तब तक हवा में ऑक्सीजन कभी खत्म नहीं होगी। उस समय इस घोषणा से वैज्ञानिकों को जरूर कुछ सांत्वना मिली होगी। पर अब परिस्थिती बिल्कुल भिन्न है - आज हजारों एकड़ घने जंगल रोजना खेती के लिए कट रहे हैं और लकड़ी की मांग भी बहुत बढ़ रही है।

2 प्रकाश और कार्बोहाइड्रेट

जब ऑक्सीजन शरीर के अंदर पदार्थों के साथ मिलती है तब कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी के साथ-साथ ऊर्जा (इनर्जी) भी पैदा होती है। इनर्जी एक यूनानी शब्द है जिसका मतलब होता है 'छिपा कार्य' क्योंकि ऊर्जा के कारण ही कार्य सम्पन्न होता है। ऑक्सीजन और शरीर के पदार्थों से मिलकर जो रासायनिक ऊर्जा पैदा होती है उससे हम अपनी दिन भर की गतिविधियां कर पाते हैं।

प्रीस्टले के समय में वैज्ञानिक ऊर्जा के बारे में बहुत कम जानते थे पर बाद में उसके बारे में बहुत कुछ मालूम पड़ा। अगर ऑक्सीन, कार्बन और हाईड्रोजन अणुओं के एक-साथ मिलने से कार्बन-डाईऑक्साइड, पानी और साथ में ऊर्जा भी बनती है तो फिर इसकी उल्टी प्रक्रिया क्या होगी? क्यों न ऑक्सीजन बनाएं और फिर उसे हवा में छोड़ें। बाद में वैज्ञानिकों को पता चला इस प्रक्रिया में ऊर्जा की स्थिति भी उल्टी होगी। ऑक्सीजन बनाने में ऊर्जा लगेगी। इसलिए अगर पेड़-पौधे ऑक्सीजन बनाते हैं तो उन्हें कहीं-न-कहीं से ऊर्जा जरूर मिलती होगी। उन्हें यह ऊर्जा कहां से मिलती है?

एक डच वैज्ञानिक जैन इंगिनहाउस (1730-1799) ने इसका उत्तर खोजा। पेड़-पौधे किस तरह ऑक्सीजन बनाते हैं वो इसका अध्ययन करता रहा। 1779 में उसने पाया कि यह प्रक्रिया सिर्फ धूप में ही होती है। अंधेरे में पेड़-पौधे

ऑक्सीजन नहीं बनाते हैं।

सूर्य की धूप में ऊर्जा होती है और इसी ऊर्जा का उपयोग कर पेड़-पौधे वे जटिल पदार्थ बनाते हैं जिसे सभी प्राणाी भोजन जैसे उपयोग करते हैं। सूर्य की ऊर्जा के कारण ही पेड़-पौधे ऑक्सीजन का भी निर्माण कर पाते हैं।

सरल चीजों से जटिल पदार्थों के निर्माण को वैज्ञानिक 'सिंथेसिस' कहते हैं। यह एक यूनानी शब्द है जिसका मतलब होता है 'एक-साथ लाना'। जब सूर्य के प्रकाश द्वारा यह काम सम्पन्न होता है तो उसे 'फोटोसिंथेसिस' यानी 'प्रकाश द्वारा एक-साथ लाना' कहते हैं।

फोटोसिंथेसिस पृथ्वी पर होने वाली सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। उसी से सारे भोजन और ऑक्सीजन का निर्माण होता है जो मनुष्य समेत सभी प्राणियों के लिए अनिवार्य होता है।

पर कार्बन के अणु कहां से आए? यह प्रश्न अभी तक बना था। पानी से तो केवल ऑक्सीजन और हाईड्रोजन ही मिलती थी।

1782 में पहली बार एक स्विस वैज्ञानिक जीन सेनेबेहे (1742-1809) ने सुझाया कि हवा में मौजूद कार्बन-डाईऑक्साइड ही कार्बन का स्रोत्र होगी।

1804 में एक अन्य स्विस वैज्ञानिक निकोलस थियोडोर सोसूर (1767-1845) ने हेलमोन्ट के प्रयोग को दोहराया। उसने बहुत सावधानी से पौधे को पानी और कार्बन-डाईऑक्साइड भी सप्लाई की। हरेक की कितनी मात्रा खर्च हुई और पौधे का भार कितना बढ़ा यह भी उसने मापा। उसने दिखाया की पौधों का पदार्थ मुख्यत: कार्बन और पानी से बना होता है।

इस प्रकार से देखने पर पेड़ों में

कार्बन-डाईऑक्साइड + पानी + प्रकाश ऊर्जा ----- से भोजन + ऑक्सीजन (फोटोसिंथेसिस)

और प्राणियों में

भोजन + ऑक्सीजन ----- कार्बन-डाईऑक्साइड + पानी + रासायनिक ऊर्जा (सांस लेना)

फोटोसिंथेसिस और रेस्पिरेशन (सांस लेने की प्रक्रिया) विपरीत दिशाओं में काम करती हैं। एक में प्रकाश ऊर्जा, रासायनिक ऊर्जा में बदलती है। इसमें प्रकाश ऊर्जा का उपयोग होता है परन्तु भोजन और ऑक्सीजन का नहीं। और प्रकाश ऊर्जा की हमें फिक्र नहीं करनी चाहिए क्योंकि करोड़ों-खरबों सालों से

सूर्य ने वो हमें उपलब्ध कराई है और वो भविष्य में भी हमें मिलती रहेगी।

फोटोसिंथेसिस और रेस्पिरेशन की प्रक्रियाओं में जो चीजें बहुत आसनी से उपलब्ध हैं वो हैं कार्बन-डाईऑक्साइड, पानी और ऑक्सीजन। इसमें हरेक का एक छोटा परमाणु होता है जो अणुओं से मिलकर बना होता है। कार्बन-डाईऑक्साइड का परमाणु एक कार्बन और दो ऑक्सीजन के अणुओं का बना होता है। पानी का परमाणु दो हाईड्रोजन और एक ऑक्सीजन के अणुओं का बना होता है। और ऑक्सीजन का परमाणु दो ऑक्सीजन के अणुओं का बना होता है।

परन्तु भोजन और जीवित प्राणी जिस पदार्थ के बने होते हैं वे काफी जटिल परमाणुओं के बने होते हैं।

1815 में एक ब्रिटिश वैज्ञानिक विलियम प्राउट (1785-1850) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भोजन के पदार्थों को तीन प्रमुख समूहों में बांटा। आज हम उन्हें कार्बोहाइड्रेट्स, वसा और प्रोटीन्स के नामों से जानते हैं। कार्बोहाइड्रेट्स और वसा दोनों में बड़े परमाणु होते हैं जिनमें कार्बन, हाईड्रोजन और ऑक्सीजन के अणु होते हैं। प्रोटीन्स में विशेषकर बड़े परमाणु होते हैं और उनमें कार्बन, हाईड्रोजन और ऑक्सीजन के साथ-साथ नाईट्रोजन, गंधक के साथ कुछ अन्य अणु भी छिटके होते हैं।
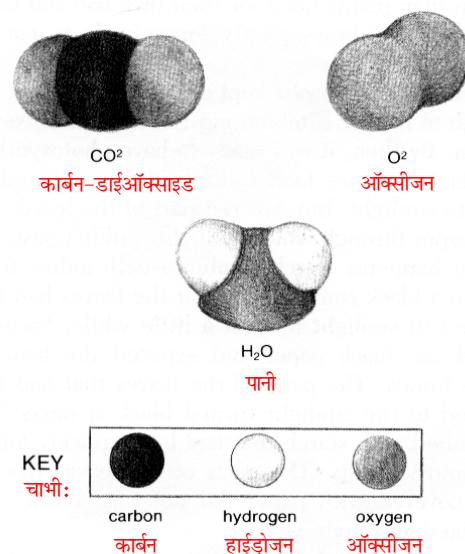
कार्बन-डाईऑक्साइड, ऑक्सीजन और पानी के परमाणु

Carbon Dioxide, Oxygen and Water Molecules

पौधों में, इन तीनों चीजों में से कार्बन-डाईऑक्साइड ही सबसे ज्यादा मिलती है। सब पौधों में सेल्यूलोज होता है जो लकड़ी का प्रमुख तत्व है। सेल्यूलोज कड़क और मजबूत होता है और उसके कारण ही पेड़ खड़े रहते हैं। एक अन्य प्रकार का कार्बोहाइड्रेट होता है स्टार्च या मांड - जो मुलायम होता है और जल्दी पच जाता है। पेड़-पौधों में संचित होने वाली यही प्रमुख भोजन होता है।

अगर पौधे में कार्बोहाइड्रेट मौजूद हो तो वो आसानी से वसा बना सकता है। वसा भोजन का संकेंद्रित (कांसनट्रेटिड) प्रकार होता है। पौधे कार्बोहाइड्रेट के साथ पानी या मिट्टी में से घुलनशील खनिजों का उपयोग कर प्रोटीन्स भी बनाते हैं।

क्योंकि पौधों में इतनी अधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेट होता है और कार्बोहाइड्रेट से वसा और प्रोटीन्स भी बन सकते हैं इसलिए यह मानना सही होगा कि फोटोसिंथेसिस से मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट्स बनते होंगे। पौधों में बाकी सभी पदार्थ साधारण रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स से बनते होंगे। यही बात प्राणियों पर भी लागू होती है।

इसे एक जर्मन वैज्ञानिक जूलियन फॉन जैक्स (1832-1897) ने दिखाया। 1868 में उसने खोज की कि रात के समय रासायनिक ऊर्जा का उपयोग कर पौधे ऑक्सीजन को अपने अंदर के पदार्थ से मिलाकर कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी बनाते हैं। सभी जानवर भी यही करते हैं। पर सूर्य के प्रकाश में फोटोसिंथेसिस के कारण पौधे बहुत अधिक मात्रा में ऑक्सीजन और भोजन का उत्पादन करते हैं। क्योंकि पौधों को इतनी मात्रा में भोजन और ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती है इसलिए यह चीजें अन्य प्राणियों को खाने और सांस लेने के लिए उपलब्ध होती हैं।

1872 में जैक्स ने एक पौधे को बहुत समय तक अंधेरे में रखा। इतने वक्त में पौधे का सारा पदार्थ ऑक्सीजन के साथ मिल गया। अब पौधा फोटोसिंथेसिस द्वारा भोजन बनाने के लिए तैयार था। अब जैक्स ने पौधे को धूप में रखा पर उसके पत्तों के कुछ हिस्सों को काले कागज से ढंक दिया जिससे उन पर प्रकाश न पड़ सके।

मांड और आयोडीन एक-साथ मिलकर एक काला यौगिक बनाते हैं। पत्तियों को थोड़ी देर धूप दिखाने के बाद जैक्स ने काला कागज हटाकर पत्तियों पर आयोडीन की भाप छिड़की। पत्तियों के वे भाग जिन्हें धूप दिखाई गई थी तुरन्त काले पड़ गए। धूप में पड़ी पत्तियों में खूब मांड बना था जो फोटोसिंथेसिस द्वारा बना था। जिन पत्तियों को कागज से ढंका गया था वे काली

नहीं पड़ीं। उनमें कुछ भी मांड नहीं था।

वैसे फोटोसिंथेसिस द्वारा बहुत तेजी से कार्बोहाइड्रेट्स बनते हैं पर शायद उनमें मांड सबसे पहले नहीं बनता हो।
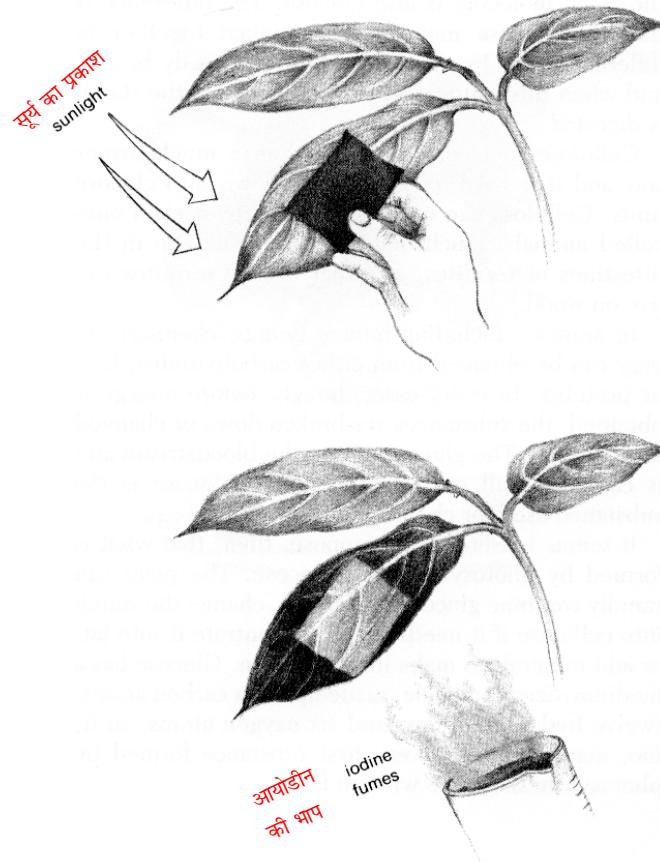
यह विचार इसलिए पैदा होता है क्योंकि मांड के परमाणु बहुत बड़े होते हैं और उनमें छोटे परमाणुओं की सैकड़ों लड़ियां होती हैं। और मांड की इन लड़ियों को आसानी से छोटे टुकड़ों में तोड़ा जा सकता है।

मांड के परमाणुओं के छोटे टुकड़े शक्कर होते हैं। सबसे आम प्रकार की शक्कर में मांड के चेन-परमाणु की सिर्फ एक कड़ी (लिंक) होती है। इस अकेली कड़ी को ग्लूकोज कहते हैं।

सेल्यूलोज के परमाणु में मांड की अपेक्षा छोटे परमाणुओं की कहीं लम्बी चेन होती है। पर सेल्यूलोज में भी छोटा परमाणु ग्लूकोज का होता है। अंतर बस इतना है कि ग्लूकोज के परमाणु एक-दूसरे के साथ अलग-अलग तरीकों से जुड़े होते हैं। मांड में यह कड़ियां जल्दी टूट जाती हैं। जब शरीर में ऐसा होता है तब हम कहते हैं कि मांड पच गया है।
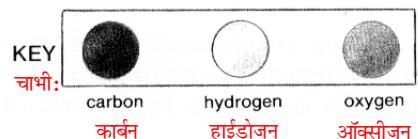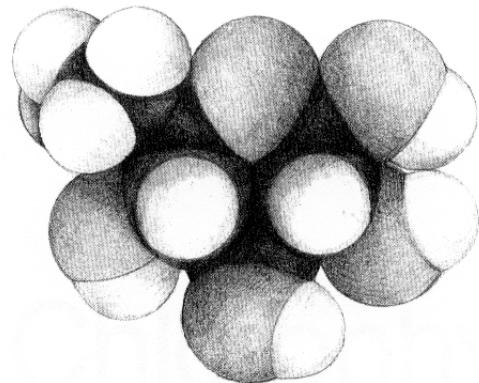
सेल्यूलोज के परमाणु एक-दूसरे के साथ बहुत मजबूत कड़ियों से जुड़े होते हैं और उन्हें ग्लूकोज की छोटी इकाईयों में तोड़ना बहुत कठिन होता है। (ऐसे एक-कोशिकीय जीव दीमक की आंत में रहते हैं और इसलिए दीमक लकड़ी खाकर जिन्दा रह पाती है।)

जानवरों और मनुष्यों में रासायनिक ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट्स, वसा और प्रोटीन्स से प्राप्त की जा सकती है। पर हर स्थिति में ऊर्जा मिलने से पहले पदार्थ

को तोड़ना पड़ता है या फिर उसे ग्लूकोज में बदलना पड़ता है। ग्लूकोज रक्त प्रवाह द्वारा शरीर के हरेक अंग में पहुंचती है। ग्लूकोज ही वो पदार्थ है जो रासायनिक ऊर्जा के लिए उपयोग होता है।

यह मानना तार्किक होगा कि फोटोसिंथेसिस से जो पदार्थ पैदा होता है वो ग्लूकोज ही होगा। पेड़-पौधे चाहें तो जल्दी-जल्दी ग्लूकोज से मांड बना सकते हैं, या मांड को सेल्यूलोज में बदल सकते हैं, या फिर उसे गाढ़ा करके वसा बना सकते हैं, अथवा उसमें खनिज मिलाकर प्रोटीन्स बना सकते हैं। ग्लूकोज का एक मध्यम आकार का परमाणु होता है जिसमें छह कार्बन के अणु, बारह हाईड्रोजन के अणु और छह ऑक्सीजन के अणु होते हैं। शायद इसीलिए ग्लूकोज फोटोसिंथेसिस के दौरान बनने वाला पहला पदार्थ न हो। इसकी विस्तृत जानकारी हम आगे पढ़ेंगे।

3 क्लोरोफिल

पर अब एक और प्रश्न खड़ा होता है। (वैज्ञानिकों के सामने हमेशा अनेकों प्रश्न होते हैं। चाहें वे कितनी भी खोजें कर लें फिर भी उनके सामने तमाम पहेलियां मुंह बाए खड़ी होती हैं। दरअसल इसी में विज्ञान का असली मजा है।)

पेड़-पौधों में ही फोटोसिंथेसिस होता है, प्राणियों में क्यों नहीं? इसका मतलब पेड़-पौधों में जरूर कोई ऐसी चीज होगी जो प्राणियों में नहीं होती है।

जरा रंग पर ही गौर करें। पेड़-पौधों आमतौर पर हरे होते हैं, कम-से-कम उनके बहुत से हिस्से हरे होते हैं। (कुछ पक्षियों के पंख हरे होते हैं पर पंखों का हरा रंग, रासायनिक रूप से पत्तों के हरे रंग से बिल्कुल अलग होता है।)

क्या पेड़-पौधों का हरा होना जरूरी है? शायद हां। कुछ ऐसी जीवित चीजें हैं जो देखने में बिल्कुल पौधों जैसी दिखती हैं। उनका ढांचा और उनमें रासायन भी पौधों जैसे ही होते हैं। फिर भी यह पौधे हरे नहीं होते। उदाहरण हैं कुकुरमुत्ते (मशरूम)। ऐसे बिना-हरे पौधों में फोटोसिंथेसिस नहीं होता है।

जो पौधे हरे होते हैं उनके केवल हरे हिस्सों में ही फोटोसिंथेसिस होता है। उदाहरण के लिए पेड़ की जड़, छाल, तने और टहनियों में फोटोसिंथेसिस नहीं होता है। फोटोसिंथेसिस केवल हरी पत्तियों में होता है।

1817 में दो फ्रेंच वैज्ञानिकों पियरे जोजफ पेल्टियर (1788-1872) और जोजफ बियानाम कोवनटू (1795-1877) ने पौधों के हरे तत्व को अलग किया।

उन्होंने उसका नाम दिया 'क्लोरोफिल' जो एक यूनानी शब्द से आता है और उसका मतलब होता है 'हरी पत्ती'।

क्लोरोफिल का परमाणु बहुत जटिल था और करीब सौ साल तक वैज्ञानिक उसके बारे में बहुत कम जान सके। उन्होंने बहुत कोशिश की क्योंकि उन्हें उस तत्व का महत्व मालूम था। वो सिर्फ पौधों में होता था जानवरों में नहीं और उसी से फोटोसिंथेसिस संभव होती थी।

फिर 1906 इस प्रश्न के उत्तर मिलने लगे। यह जर्मन वैज्ञानिक रिचर्ड विलशैट्टर (1872-194) के अनुसंधान के कारण संभव हुआ। वो पहले व्यक्ति थे जिन्होंने क्लोरोफिल को शुद्ध कर उसका विस्तार से अध्ययन किया।

उसने क्लोरोफिल में दो, लगभग एक-जैसे पदार्थ पाए जिनके परमाणु बहुत समान थे। उसने एक को 'क्लोरोफिल-ए' नाम दिया। पौधों में 3/4 भाग 'क्लोरोफिल-ए' का था। बाकी बचे 1/4 भाग को उसने 'क्लोरोफिल-बी' नाम दिया।

विलशैट्टर ने फिर क्लोरोफिल परमाणु के अंदर अणुओं का अध्ययन किया। उसने उनमें कार्बन, ऑक्सीजन, हाईड्रोजन और नाईट्रोजन के अणु पाए। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जीवित चीजों के हर परमाणु में कार्बन, ऑक्सीजन और हाईड्रोजन के अणु पाए जाते हैं और बहुत में नाईट्रोजन के अणु भी होते हैं।

इनके साथ-साथ विलशैट्टर को मैग्नीशियम के भी अणु मिले। यह एक आश्चर्य की बात थी। जीवित प्राणियों में मिलने वाला क्लोरोफिल पहला परमाणु था जिसमें मैग्नीशियम के अणु पाए गए थे।

विलशैट्टर ने फिर दिखाया कि 'क्लोरोफिल-ए' के परमाणु में पचपन कार्बन के अणु, बहत्तर हाईड्रोजन के अणु, चार नाईट्रोजन के अणु, पांच ऑक्सीजन के अणु और एक मैग्नीशियम का अणु था। 'क्लोरोफिल-बी' लगभग वैसा ही था पर उसमें सत्तर हाईड्रोजन के अणु और छह ऑक्सीजन के अणु थे।

विलशैट्टर उन सारे अणुओं की संरचना नहीं खोज पाए। पर उन्होंने इतना जरूर ढूंढा कि परमाणु में अणुओं के छोटे छल्ले (रिंग्स) थे। हरेक छल्ले में चार कार्बन और एक नाईट्रोजन का अणु था। इस प्रकार की संरचना को 'पिरोल रिंग' कहते हैं। इसके लिए विलशैट्टर को 1915 में रासायनशास्त्र के लिए नोबेल पुरस्कार मिला।

उसके बाद एक अन्य जर्मन वैज्ञानिक हैन्स फिशर (1881-1945) ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। उसने दिखाया कि चार 'पिरोल रिंग्स' को एक बड़े छल्ले 'प्रोफिरिन रिंग' में सजाया जा सकता था। 'प्रोफिरिन रिंग' के केंद्र में एक

लोहे के अणु और कुछ अणुओं के छल्लों को रिंग के रिम के साथ जोड़कर उसने 'हीम' नाम के यौगिक का ढांचा खोजा। 'हीम' के ही कारण रक्त लाल होता है। यह उसने 1930 में किया और उसी वर्ष इस शोध के लिए उसे रासायनशास्त्र का नोबेल पुरुस्कार मिला।

क्लोरोफिल का ढांचा 'हीम' से मिलता-जुलता निकला। क्लोरोफिल की 'प्रोफिरिन रिंग' के केंद्र में लोहे की बजाए एक मैग्नीशियम का अणु था। क्लोरोफिल के रिम के साथ जुड़ी अणुओं की चेन्स 'हीम' की तुलना में अलग और अधिक जटिल थीं। पर फिशर ने उनके बारे में पूरी जानकारी हासिल की।

इसका अंतिम प्रमाण मिला 1960 में जब एक अमरीकी वैज्ञानिक राबर्ट बर्न्स वुडवर्ड (1917-1979) ने सारे अणुओं को फिशर के बताए अनुसार सही नियोजन में सजाया। वुडवर्ड को पदार्थ मिला वो हरे पौधों से मिले क्लोरोफिल जैसा ही काम करता था।

इसका मतलब फिशर का सुझाया ढांचा एकदम ठीक था। इस कार्य और अन्य अनुसंधान के लिए वुडवर्ड को 1965 में रासायनशास्त्र के लिए नोबेल पुरुस्कार मिला।

आपको शायद लगे कि हरे पौधों से क्लोरोफिल प्राप्त करने के बाद वैज्ञानिक उससे फोटोसिंथेसिस की प्रक्रिया शुरू कर सकते थे। कल्पना करें एक प्रयोग की - क्लोरोफिल को पानी में घोलकर उसमें कार्बन-डाईऑक्साइड के बुलबुले छोड़ें। क्लोरोफिल की मौजूदगी में कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी को आपस में मिलकर ग्लूकोज और स्टार्च (मांड) बनाना चाहिए।

शायद बनाना चाहिए था, परन्तु असलियत में बनता नहीं है। क्लोरोफिल पौधे के अंदर काम करता है पौधे के बाहर नहीं।

पर ऐसा क्यों होता है? पौधे के अंदर क्लोरोफिल एक जटिल प्रक्रिया का अंग होता है। क्लोरोफिल का पूरा तंत्र काम करता है, क्लोरोफिल अकेले काम नहीं करता है।

सब प्राणी और पौधे कोशिकाओं के बने होते हैं। कोशिका 1-इंच का लगभग 1/750 वां हिस्सा होती है। कुछ बहुत छोटे प्राणी और पौधे केवल एक कोशिका के बने होते हैं। वे इतने छोटे होते हैं कि उन्हें केवल माईक्रोस्कोप में से ही देखा जा सकता है। बड़े प्राणी और पौधे भी छोटी कोशिकाओं के बने होते हैं परन्तु उनमें बहुत अधिक संख्या में कोशिकाएं होती हैं। सामान्य मनुष्य के शरीर में करीब 50-ट्रिलियन कोशिकाएं होती हैं।

कोशिका छोटी भले ही हो परन्तु वो पदार्थ का महज एक टुकड़ा नहीं है। उसमें छोटे-छोटे औरगैनेलाज होते हैं। हरेक कोशिका के अंदर एक छोटा

हिस्सा होता है जो 'न्यूक्लियस' कहलाता है और जिसके अंदर क्रोमोसोम्स होते हैं। क्रोमोसोम्स ही कोशिका के दो भागों में विभक्त होने की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं। वे ही मूल कोशिका से विभक्त दोनों कोशिकाओं में और पालकों से बच्चों में भौतिक गुणधर्म स्थानांतरित करते हैं।
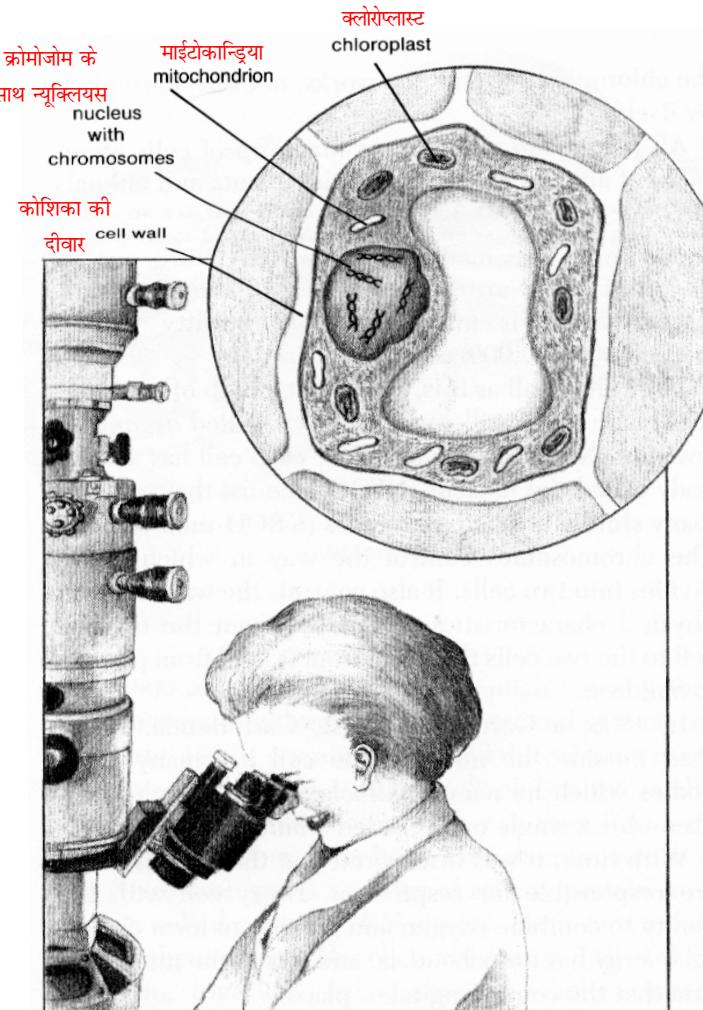
Plant cell as seen under an electron microscope

इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप के नीचे पौधों की कोशिका

1898 में एक जर्मन वैज्ञानिक कार्ल बेन्डा ने कोशिका के बाहर छोटे पिंडों की खोज की जिनका नाम 'माईटोकान्ड्रिया' था। उनमें से एक को 'माईटोकान्ड्रियान' बुलाते हैं।

Mitochondrion
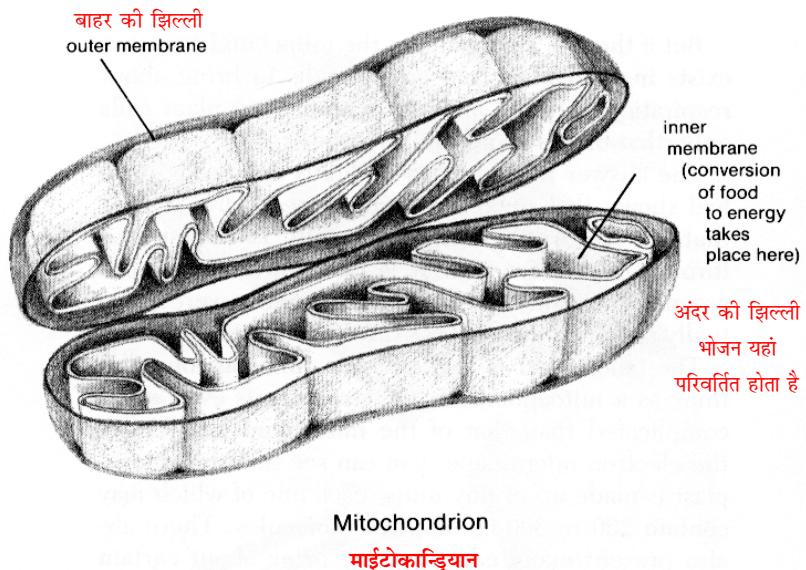
माईटोकान्ड्रियान

कुछ समय बाद खोज से पता चला कि माईटोकान्ड्रिया सांस लेने का जिम्मा निभाते हैं। हर कोशिका जो ऑक्सीजन और ग्लूकोज को मिलाकर रासायनिक ऊर्जा पैदा करती है उसमें माईटोकान्ड्रिया होता है। और माईटोकान्ड्रिया में ही यह मिलावट होती है।

सामान्य माईटोकान्ड्रिया का आकार एक छोटी फुटबॉल जैसा होता है जो 1/1000 इंच लम्बी और 1/25,000 इंच चौड़ी होती है। हरेक कोशिका में सैकड़ों से हजारों माईटोकान्ड्रिया हो सकते हैं। 1970 में वैज्ञानिकों ने इलक्ट्रॉन माईक्रोस्कोप का आविष्कार किया। उनसे वे उन सूक्ष्म चीजों को भी देख पाए जिन्हें साधारण माईक्रोस्कोप्स से देख पाना संभव न था। उसके बाद यह पता चला कि माईटोकान्ड्रिया का भी बहुत जटिल ढांचा होता है। उसमें बहुत से विशेष प्रोटीन्स के परमाणु सजे होते हैं जिन्हें 'एनजाइम' कहते हैं। प्रत्येक एनजाइम एक विशेष रासायनिक बदल ला सकता है। जब सारे एनजाइम एक साथ मिलकर काम करते हैं तो उनसे एक ऐसा परिवर्तन आता है जिससे ग्लूकोज और ऑक्सीजन मिलकर रासायनिक ऊर्जा बनाते हैं।
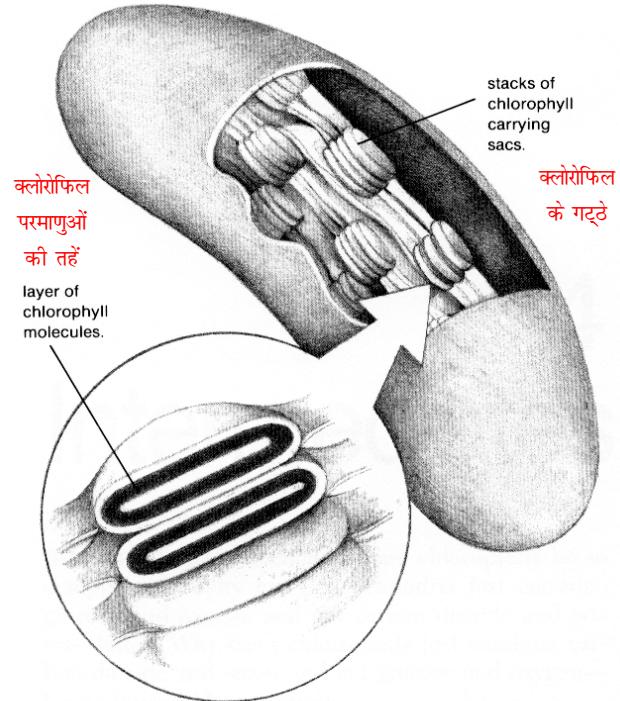
Chloroplast
क्लोरोप्लास्ट

अगर पौधों और प्राणियों में मौजूद औरगैनेलाज - माईटोकान्ड्रिया के कारण ये कोशिकाएं सांस ले पाती थीं तो क्या पौधों में कोई भिन्न औरगैनेलाज होता है जिससे फोटोसिंथेसिस होता था?

इसका उत्तर 'हां' था। 1883 में जूलियन फॉन जैक्स जिसने फोटोसिंथेसिस से स्टार्च (मांड) बनने की खोज की थी ने खोजा कि पौधों की कोशिकाओं में क्लोरोफिल पूरी कोशिका में नहीं फैला होता है। एक कोशिका में वो एक या अधिक औरगैनेलाज में मिलता है। ऐसे औरगैनेलाज को बाद में एक अलग नाम दिया गया - क्लोरोप्लास्ट।

माईटोकान्ड्रिया की तुलना में क्लोरोप्लास्ट दो-तीन गुना मोटा होता है। क्लोरोप्लास्ट का ढांचा माईटोकान्ड्रिया की अपेक्षा और भी अधिक जटिल होता

है। इलक्ट्रॉन माईक्रोस्कोप के नीचे आपको दिखाई देगा कि क्लोरोप्लास्ट छोटी-छोटी इकाईयों का बना होता है और हरेक इकाई में 250-300 क्लोरोफिल के परमाणु होते हैं।

इसलिए एक अकेला क्लोरोफिल का परमाणु खुद से फोटोसिंथेसिस की प्रक्रिया को अंजाम नहीं दे सकता है। इसके लिए उसे समूहों में काम करना होगा जिनमें एनजाइम्स का होना अनिवार्य है।

अगर कोई कोशिका टूटी हो तो उसका माईटोकान्ड्रिया आसानी से मिल जाता है। क्लोरोप्लास्ट बड़े और जटिल होने के कारण बहुत जल्दी टूटते भी हैं। इसलिए जब किसी पौधे की कोशिका टूटती है तो उसके क्लोरोप्लास्ट के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और वे अकेले फोटोसिंथेसिस नहीं कर पाते हैं।

1954 में अमरीकी-पोलिश वैज्ञानिक डेनियल आई अरनॉन (जन्म 1910) पहली बार पौधों की कोशिका को सावधानी से तोड़ पाए जिससे उनका क्लोरोप्लास्ट साबुत बाहर निकला और उनसे फोटोसिंथेसिस सफलतापूर्वक हो पायी।

4 इंटरमीडियेट्स

माईटोकान्ड्रिया और क्लोरोप्लास्ट इतने जटिल क्यों होते हैं? माईटोकान्ड्रिया ऑक्सीजन और ग्लूकोज को मिलाकर कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी क्यों नहीं बनाते हैं? क्लोरोप्लास्ट कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी मिलाकर ऑक्सीजन और ग्लूकोज क्यों नहीं बनाते हैं? उनकी प्रक्रिया इतनी सरल क्यों नहीं है?

अगर ग्लूकोज को ऑक्सीजन के साथ एक ही चरण में मिलाया जाता तो उससे बहुत
अधिक ऊर्जा पैदा होती है और कोशिकाएं उसे सम्भाल नहीं पातीं हैं। अगर कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी एक ही चरण में मिलते तो उसके लिए एक बार में बहुत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती। कोशिकाएं इतनी ऊर्जा सप्लाई नहीं कर पातीं।

इसलिए दोनों ही परिस्थितियों में प्रक्रिया धीरे-धीरे ही जारी रहती है। इसलिए एक बदल के बाद दूसरी छोटी बदल होती है जिससे कि ऊर्जा कम मात्रा में उत्पन्न हो और कम मात्रा में ही उपयोग हो। छोटी मात्रा में बदल को कोशिकाएं दोनों दिशाओं में स्वीकार करती हैं।

इसका मतलब है कि सभी छोटे परिवर्तन नियंत्रित होने चाहिए। कोई

भी बहुत तेज या हल्की गति से न हो और सभी सही क्रम में हों। इसका मतलब है कि हरेक परिवर्तन का नियंत्रण एक विशेष एनजाइम द्वारा हो। माईटोकान्ड्रिया और क्लोरोप्लास्ट दोनों का संयोजन सावधानी से हो जिससे की सब कुछ अच्छी तरह हो सके।

छोटे-छोटे परिवर्तनों से ग्लूकोज के परमाणु बनने की श्रृंखला एक ओर और कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी के परमाणु बनने की श्रृंखला दूसरी दिशा में चलती है। इन परमाणुओं को इंटरमीडियेट्स कहते हैं। वे बहुत अल्प मात्रा में ही पैदा होते हैं और उन्हें तुरन्त ही अगले चरण में भेजा जाता है जहां वे बनते ही उपयोग हो जाते हैं।

1905 में एक ब्रिटिश वैज्ञानिक आर्थर हारडिन (1865-1940) इस विषय का अध्ययन कर रहा था कि जब कुछ विशेष कोशिकाएं टूटती हैं तो वे ग्लूकोज को अल्कोहल और कार्बन-डाईऑक्साइड में बदलती हैं। इस परिवर्तन में ऑक्सीजन की जरूरत नहीं पड़ती है और यह सांस लेने की प्रक्रिया से ज्यादा सरल होता है, पर उससे करीबी से जुड़ा होता है और छोटे-छोटे चरणों में सम्पन्न होता है।

जिस पानी में कोशिकाएं तैर रहीं थीं उसमें कार्बन-डाईऑक्साइड के बुलबुलों से ग्लूकोज का टूटना साफ जाहिर होता है। पर कुछ देर बाद बुलबुलों का बनना बंद हो जाता है। पर कोशिकाएं अभी भी जिन्दा थीं और काफी मात्रा में ग्लूकोज भी मौजूद था। फिर सब कुछ एकदम बंद क्यों हुआ?

हारडेन को ऐसा लगा जैसे ग्लूकोज को तोड़ने के लिए जिस चीज की जरूरत थी वो खत्म हो गई हो। उसने इस मिश्रण में अलग-अलग चीजें मिलाने की कोशिश की। उसने जब इस मिश्रण में अल्प मात्रा में फास्फेट नाम का खनिज मिलाया तो फिर से बुलबुले बनना शुरू हो गए। उससे पहले किसी को यह पता नहीं था कि फास्फेट का, ग्लूकोज के तोड़ने में कोई रोल होता होगा।

हारडेन के ग्लूकोज के मिश्रण का परीक्षण अनेकों चीजों के साथ किया जिनमें फास्फेट होने की सम्भावना थी। उसने पाया कि ग्लूकोज एक मिलती-जुलती शक्कर फ्रुक्टोज में बदल गया था और फ्रुक्टोज के परमाणुओं में दो फास्फेट के ग्रुप जुड़ गए थे। इस यौगिक को फ्रुक्टोज डाईफास्फेट कहते हैं और यह ग्लूकोज की निर्माण प्रक्रिया में बनने वाला पहला इंटरमीडियेट था।

हारडेन को उसकी इस खोज के लिए 1929 का नोबेल पुरुस्कार मिला।

उसके बाद कई अन्य इंटरमीडियेट्स खोजे गए। धीरे-धीरे करके ग्लूकोज से ऑक्सीजन से कार्बन-डाईऑक्साइड से पानी तक छोटे-छोटे चरणों

की एक लम्बी श्रृंखला खोजी गई। ऐसा मालूम पड़ा कि बहुत से इंटरमीडियेट्स के साथ फास्फेट के समूह जुड़े होते हैं। और यह फास्फेट के समूह एक परमाणु से दूसरे परमाणु में आसानी से उपयोगी मात्रा में ऊर्जा स्थानांतरण का काम करते हैं।

अगर ग्लूकोज को फास्फेट इंटरमीडियेट के बिना तोड़ा गया तो उसकी तुलना सौ डॉलर के नोट से की जा सकती है। सौ डॉलर काफी बड़ी रकम होती है पर वो हमारे किसी काम की नहीं होगी। मसलन अगर आप एक टॉफी या आईसक्रीम खरीदना चाहते हैं या बस का टिकट खरीदना चाहते हैं तो दुकानदार या कंडक्टर चिल्लर न होने के कारण आपसे सौ डॉलर के नोट को नहीं स्वीकार करेगा।

हां अगर हम बैंक जाकर उस सौ डॉलर के नोट के दस, पांच और एक रुपए के नोट ले आएं तो वे बहुत उपयोगी साबित होंगे। छोटे नोट हरेक कोई लेगा।
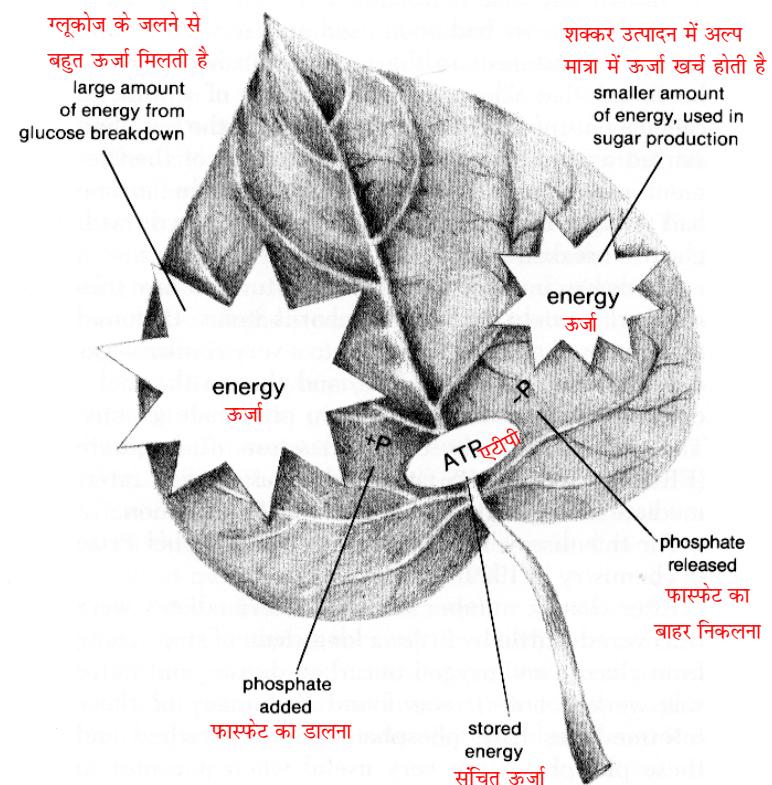
फास्फेट के इंटरमीडियेट्स कोशिका को थोड़ी-थोड़ी ऊर्जा प्रदान करते हैं और शरीर उसका आसानी से उपयोग कर पाता है। एक इंटरमीडियेट एडीनोसीन-ट्राई-फास्फेट (एटीपी) विशेषकर उपयोगी होता है। शरीर के हरेक हिस्से में जहां ऊर्जा इस्तेमाल होती है वहां एटीपी का उपयोग होता है।

सांस लेने की प्रक्रिया के मध्य चरणों को खोजना फोटोसिंथेसिस की तुलना में कहीं आसान था।

सांस की प्रक्रिया को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटकर हरेक छोटे टुकड़े का विस्तृत अध्ययन करना सम्भव था। फिर उन सब टुकड़ों को जिग-सॉ पहेली जैसे आपस में जोड़कर सम्पूर्ण चित्र को देख पाना सम्भव था। दूसरी ओर क्योंकि फोटोसिंथेसिस सिर्फ संपूर्ण क्लोरोप्लास्ट के साथ ही काम करता है इसलिए उसके परिणाम इतने जटिल होते हैं कि उनका विस्तृत विश्लेषण कर पाना असंभव होता है।

और जब वैज्ञानिकों ने शोध शुरू किया तो उन्होंने गलत रास्ता चुना।

अगर हम सांस द्वारा ऑक्सीजन अंदर लेते हैं और कार्बन-डाईऑक्साइड बाहर छोड़ते हैं तो जरूर ऑक्सीजन शरीर के अंदर मौजूद कार्बन के तत्वों के साथ मिलकर कार्बन-डाईऑक्साइड बनाता होगा। ऑक्सीजन शरीर के अंदर मौजूद हाईड्रोजन के साथ मिलकर पानी भी बनाता है। परन्तु पानी के निर्माण को वैज्ञानिकों ने ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं माना। जीवित चीजों में वजन के हिसाब से कोई दो-तिहाई भाग पानी का होता है। इसलिए सांस में थोड़ा कम या अधिक पानी होना ज्यादा महत्व का नहीं समझा गया।

इसलिए वैज्ञानिकों ने अपना ध्यान कार्बन-डाईऑक्साइड पर केंद्रित किया। अगर सांस लेने के दौरान ऑक्सीजन और कार्बन मिलकर कार्बन-डाईऑक्साइड बनाते थे तो उन्हें लगा कि फोटोसिंथेसिस की प्रक्रिया में उसका बिल्कुल उल्टा होता होगा। फोटोसिंथेसिस द्वारा कार्बन-डाईऑक्साइड का विघटन होगा और उससे एक कार्बन और दो ऑक्सीजन के अणु मिलेंगे - जिनसे मिलकर ऑक्सीजन का एक परमाणु बनेगा। ऑक्सीजन का परमाणु हवा में मिल जाएगा और छह कार्बन के अणु पानी के साथ मिलकर ग्लूकोज बनाएंगे।

1937 तक वैज्ञानिकों का इसी प्रकार का सोच था।

उसी वर्ष ब्रिटिश वैज्ञानिक राबर्ट हिल ने पत्तियों से क्लोरोप्लास्ट निकाला। निकालने की प्रक्रिया क्लोरोप्लास्ट को क्षति पहुंची और उनसे फोटोसिंथेसिस नहीं हुआ। कुछ परमाणु जिनमें लोहा होता हैं सांस लेने के लिए जरूरी होते हैं और इसलिए हिल को वो फोटोसिंथेसिस के लिए भी महत्वपूर्ण

लगे। इसलिए हिल ने क्षतिग्रसत क्लोरोप्लास्ट में कुछ लोहे वाले परमाणु मिलाए।

ऐसा करने के बाद क्लोरोप्लास्ट ऑक्सीजन बनाने लगे जैसा कि फोटोसिंथेसिस के दौरान होता है। अगर ऑक्सीजन, कार्बन-डाईऑक्साइड के टूटे हुए परमाणुओं से आती जैसा कि वैज्ञानिकों का अनुमान था तो फिर कार्बन पानी के साथ मिलकर पहले ग्लूकोज और फिर स्टार्च (मांड) बनाता। परन्तु न तो ग्लूकोज और न ही स्टार्च बना, सिर्फ ऑक्सीजन बनी।

यह कैसे पता चले कि किन परमाणुओं से ऑक्सीजन निकली? ऑक्सीजन तो ऑक्सीजन होती है और उसे देखने से यह पता नहीं चलता है कि वो कहां से आई है।

Photosynthesis
फोटोसिंथेसिस
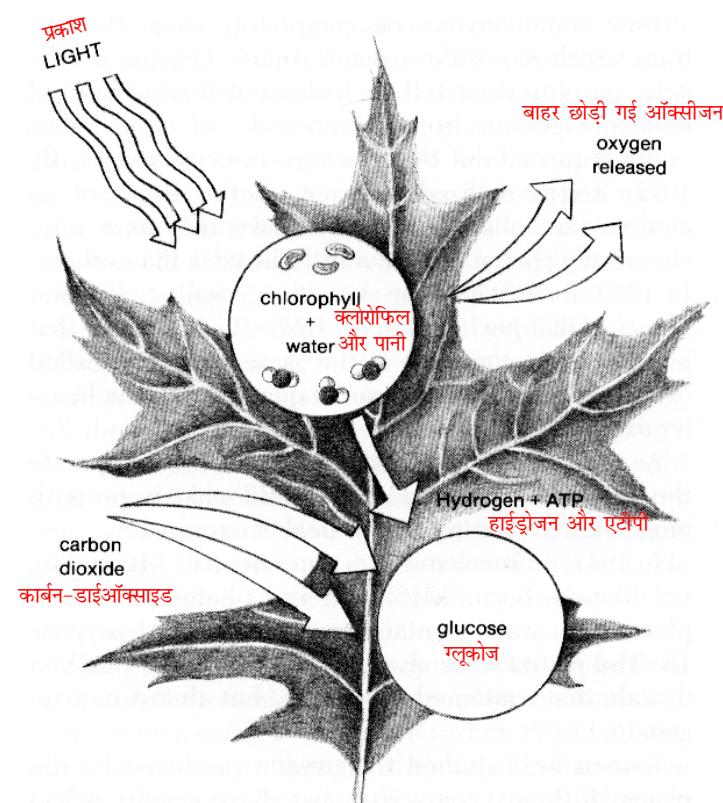
पर बाद में पता चला कि कुछ स्थितियों में हम गैस के उद्गम के बारे में पता कर सकते हैं। 1912 में पता चला किसी एक तत्व के सभी अणु बिल्कुल एक-जैसे नहीं होते हैं। उनका रासायनिक बर्ताव एक-जैसा होता है परन्तु कुछ अणु अन्य से भारी होते हैं। उदाहरण के लिए 1929 में अमरीकी वैज्ञानिक विलियम फ्रांसिस जीओक (1895-1982) ने खोजा कि ऑक्सीजन के अधिकांश अणु एक-प्रकार के यानी ऑक्सीजन-16 के थे। पर उनमें कुछ भारी ऑक्सीजन-18 के भी अणु थे।

समय के साथ वैज्ञानिकों ने ऑक्सीजन के दोनों अणुओं को अलग-अलग करना सीखा। जिसमें ऑक्सीजन-18 ज्यादा मात्रा में थी उससे वे पानी के परमाणु भी बना सकते थे।

1941 में एक कनेडियन-अमरीकी वैज्ञानिक मारटिन डेविड कामैन (जन्म 1941) ने फोटोसिंथेसिस करते पौधों में ऑक्सीजन-18 वाला पानी डाला। पौधों को सामान्य कार्बन-डाईऑक्साइड के सम्पर्क में भी रखा गया जिसमें ऑक्सीजन-16 थी परन्तु ऑक्सीजन-18 बिल्कुल नहीं थी।

कामैन ने फिर इन पौधों से निकली ऑक्सीजन का अध्ययन किया। अगर निकली ऑक्सीजन में अधिकांश ऑक्सीजन-16 थी तो वो निश्चित ही कार्बन-डाईऑक्साइड से आई होगी। पर अगर निकली ऑक्सीजन में ज्यादातर ऑक्सीजन-18 थी तो वो जरूर पानी से आई होगी।

यह पाया गया कि जो ऑक्सीजन निकली थी उसमें ऑक्सीजन-18 की मात्र बिल्कुल उतनी थी जितनी कि पानी के परमाणु में से निकलनी चाहिए थी।

उससे समस्या का समाधान हुआ। फोटोसिंथेसिस के दौरान पेड़-पौधे सूर्य की ऊर्जा से पानी को ऑक्सीजन और हाईड्रोजन में विभक्त करते हैं। और अगर क्लोरोप्लास्ट अपने सम्पूर्ण रूप में एनजाइम्स के साथ मौजूद होते हैं तो हाईड्रोजन, कार्बन-डाईऑक्साइड के साथ मिलकर ग्लूकोज और स्टार्च बनाता है और ऑक्सीजन हवा में छोड़ी जाती है।

ऑक्सीजन के परमाणु के विभक्त होने पर उसका क्या होता है? इसकी विस्तृत जानकारी वैज्ञानिकों के पास अभी भी नहीं थी। उसमें फौस्फेट परमाणुओं का रोल होगा यह उन्हें पता था पर असल में यह परमाणु क्या थे यह उन्हें अभी नहीं पता था।

ऑक्सीजन-18 के साथ काम करने में एक दिक्कत यह है कि उसे अलग करने और पहचानने में बहुत समय लगता है जबकि फोटोसिंथेसिस के इंटरमीडियेट्स बहुत जल्दी पैदा होकर लुप्त हो जाते हैं। साथ में काम करने के लिए इंटरमीडियेट्स से काफी मात्रा में ऑक्सीजन-18 अलग करना पड़ता है,

जबकि खुद इंटरमीडियेट्स की मात्रा काफी कम होती है। इसलिए वैज्ञानिकों कोई ऐसी विधि चाहिए थी जिससे कि वे ऑक्सीजन-18 को बहुत कम मात्रा में बहुत जल्दी पहचान सकें।

1934 में दो फ्रेंच वैज्ञानिक फ्रेडरिक जूलियो क्यूरी (1900-1958) और उनकी पत्नी आयरीन (1897-1956) ने अणुओं की कुछ ऐसी प्रजातियां खोजीं जो रेडियोधर्मी थीं। विकिरण को बहुत जल्दी पहचाना जा सकता है इसलिए अणुओं की रेडियोधर्मी प्रजातियों की अल्प मात्रा को भी बहुत जल्दी खोजा और पहचाना जा सकता है। इस कार्य के लिए जूलियो क्यूरी को 1935 में रासायनशास्त्र के लिए नोबेल पुरुस्कार मिला।

ऑक्सीजन और हाईड्रोजन की भी रेडियोधर्मी प्रजातियां होती हैं परन्तु वे चंद मिनटों में लुप्त हो जाती हैं इसलिए उसको उपयोग करने वाले प्रयोग को अल्प काल में ही समाप्त होना चाहिए। कार्बन की एक रेडियोधर्मी प्रजाति भी है कार्बन-11 जो बहुत तेजी से नष्ट होती है इसलिए उसे उपयोग करना सम्भव नहीं है।

कामैन जिसने दिखाया था कि फोटोसिंथेसिस के समय प्रकाश ऊर्जा पानी के परमाणु को विभक्त करती है ने 1939 एक और विलक्षण खोज की। उसने एक अन्य रेडियोधर्मी कार्बन प्रजाति कार्बन-14 की खोज की जिसे क्षय होने में लम्बा काल - हजारों साल लगते थे।

जीवित चीजों में सबसे महत्वपूर्ण अणु कार्बन के होते हैं और अब कार्बन-14 का उपयोग कर फोटोसिंथेसिस के दौरान उनके इंटरमीडियेट्स को खोजना सम्भव था।

इसके लिए वैज्ञानिकों को पौधों को, प्रकाश और कार्बन-14 से भरपूर कार्बन-डाईऑक्साइड के सम्पर्क में लाना था। पौधों को फिर पीसा जाता और उसके बाद वैज्ञानिक कार्बन-14 वाले परमाणुओं को पहचानते। यह परमाणु निश्चित रूप से फोटोसिंथेसिस के दौरान बने ही होंगे।

वैसे अल्प मात्रा के मिश्रण में से भिन्न परमाणुओं को अलग करना बहुत मुश्किल काम होता है। पर 1944 में दो ब्रिटिश वैज्ञानिकों आर्चर जॉन पोंटर मार्टिन (जन्म 1910) और रिचर्ड लौरेन्स मिलिंगटन सिंज (जन्म 1914) ने इसकी एक विधि खोजी। उन्होंने दिखाया कि अगर परमाणुओं के मिश्रण को किसी सोख्ता कागज में से सोखने दिया जाए तो अलग-अलग परमाणु भिन्न गतियों से ऊपर चढ़ेंगे। और कुछ समय बाद वे अलग-अलग या पृथक हो जाएंगे।

इस तकनीक का नाम पेपर-क्रोमैटोग्राफी पड़ा। 1953 में मार्टिन और सिंज को इस खोज के लिए रासायनशास्त्र का नोबेल पुरुस्कार मिला।
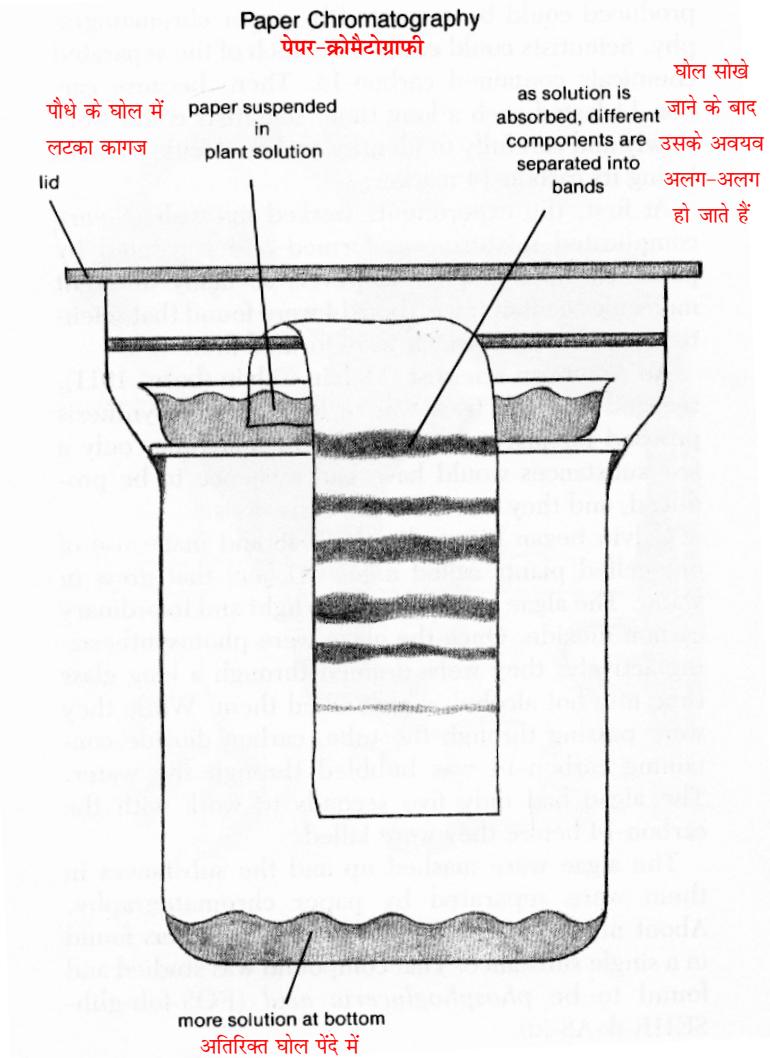
अब ऐसे तमाम प्रयोग किए जा सकते थे जिनमें फोटोसिंथेसिस करते पौधों को कार्बन-14 से भरपूर कार्बन-डाईऑक्साइड के सम्पर्क में लाया जाता और उससे बने रासायनों के मिश्रण को पेपर-क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक किया जाता। अलग किए रासायनों में किस में कार्बन-14 था इसे वैज्ञानिक आसानी से बता सकते थे। और क्योंकि कार्बन-14 बहुत लम्बे अर्से तक टिकता है इसलिए

अब वैज्ञानिक धीरे-धीरे और सावधानी से बिना कार्बन-14 के मार्कर को खोए हुए हरेक परमाणु को पहचान सकते थे।

पहले तो यह प्रयोग अपेक्षा से भी बेहतर काम करे। उनमें एक बहुत जटिल रसायन बनता जिसका विश्लेषण पेपर-क्रोमैटोग्राफी द्वारा किया जाता। पर एक मुश्किल आती। बहुत ज्यादा संख्या में कार्बन-14 वाले परमाणु बनते और वैज्ञानिकों को यह नहीं पता चलता कि कौन सा पहले बना।

एक अमरीकी वैज्ञानिक मेल्विन कैल्विन (जन्म 1911) को सही तरकीब समझ में आई - फोटोसिंथेसिस की प्रक्रिया को केवल कुछ सेकण्ड के लिए चलने दो। उस अल्प समय में केवल कुछ ही नए पदार्थ बनेंगे और वे निश्चित ही शुरुआत के होंगे।

1948 में कैल्विन ने अपने अध्ययन के लिए एक-कोशिकीय एल्जी पौधों को चुना जो पानी में उगते थे। एल्जी को प्रकाश और साधारण कार्बन-डाईऑक्साइड के सम्पर्क में रखा गया। एल्जी में तेजी से फोटोसिंथेसिस की प्रक्रिया शुरू होने के बाद उन्हें एक परखनली में मौजूद गर्म अल्कोहल में छाना गया जिससे एल्जी का खात्मा हुआ। परखनली से गुजरते समय कार्बन-14 से भरपूर कार्बन-डाईऑक्साइड पानी में बुलबुलों के रूप में ऊपर आने लगी। खत्म होने से पहले एल्जी केवल 5 सेकण्ड के लिए कार्बन-14 के सम्पर्क में रह सकी।

एल्जी को मसल कर उसके पदार्थों को पेपर-क्रोमैटोग्राफी द्वारा अलग-अलग किया गया। लगभग 90-प्रतिशत कार्बन-14 एक पदार्थ में पाया गया। इस यौगिक का अध्ययन करने पर उसे फौस्फोग्लायसीरिक ऍसिड पाया गया।

फौस्फोग्लायसीरिक ऍसिड में तीन कार्बन के अणु होते हैं। उनमें से कौन सा कार्बन-14 है कैल्विन यह भी पता कर पाया। इससे फौस्फोग्लायसीरिक ऍसिड कैसे बना वो भी समझ में आया।

लगातार प्रयोगों के बाद फोटोसिंथेसिस के दौरान हुई प्रक्रियाओं की विस्तृत जानकारी मिली और उसकी जटिलता का भी पता चला। इस शोधकार्य के लिए 1961 में कैल्विन को रासायनशास्त्र के लिए नोबेल पुरुस्कार मिला।

दो शताब्दी पूर्व प्रीस्टले ने सबसे पहले पेड़-पौधों द्वारा ऑक्सीजन बनाने की खोज की थी। आज हम फोटोसिंथेसिस के बारे में बहुत कुछ जानते हैं परन्तु उसकी जटिल प्रक्रिया के बारे में अभी और बहुत कुछ जानना बाकी है।

पेड़-पौधे अपने जटिल क्लोरोप्लास्ट द्वारा जो कुछ करते हैं उसे दोहराने की हम अभी तक कोई सरल तकनीक नहीं खोज पाए हैं। अगर हम ऐसा करने

में सफल होते तो हम सूर्य का प्रकाश, कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी का उपयोग करके शक्कर, स्टार्च और अन्य प्रकार के भोजन का निर्माण कर पाते। उससे दुनिया भर के लोगों को पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध होता।

ऐसा करने से पहले हमें अभी बहुत कुछ सीखना होगा।
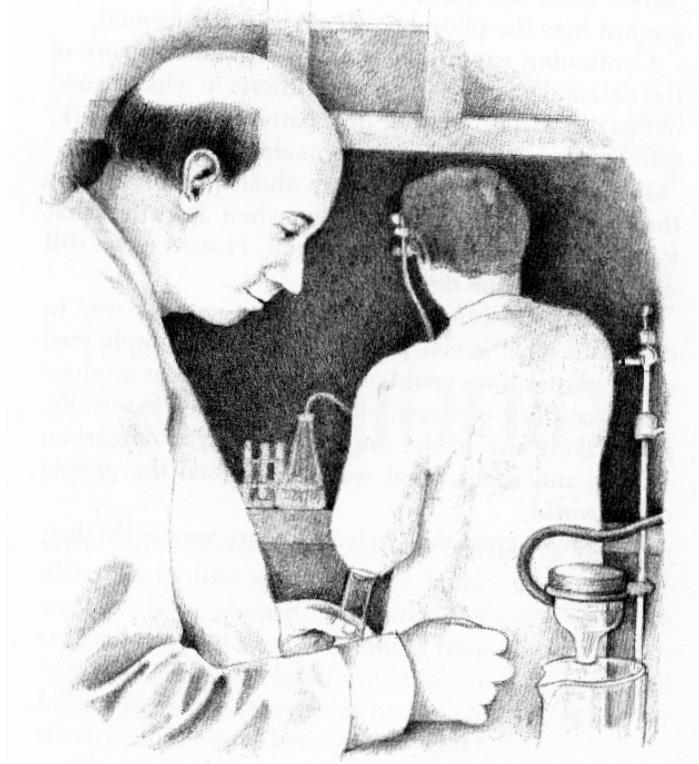
Melvin Calvin

मेल्विन कैल्विन

5 शुरुआत

फोटोसिंथेसिस की शुरुआत कैसे हुई? वैज्ञानिकों को निश्चित रूप में कुछ नहीं पता क्योंकि वे उस समय पृथ्वी पर मौजूद नहीं थे। परन्तु वो तर्क द्वारा फोटोसिंथेसिस कैसे शुरू हुई होगी उस पर अवश्य प्रकाश डाल सकते हैं।

आज से साढ़े चार बिलियन वर्ष पहले जब पृथ्वी बनी तब वहां कोई जीवन नहीं था। इसलिए उस समय हवा में बिल्कुल ऑक्सीजन नहीं होगी।

ऑक्सीजन एक बहुत ही सक्रिय पदार्थ है। वो बहुत से अन्य अणुओं के साथ मिलता है। अगर पृथ्वी पर कोई जीवन नहीं होता तो हवा में मौजूद ऑक्सीजन मिट्टी के अंदर मौजूद विभिन्न अणुओं से मिलकर धीरे-धीरे लुप्त हो जाती। आज ऑक्सीजन के मौजूद होने का एक ही कारण है - वो फोटोसिंथेसिस द्वारा लगातार बनती रहती है। जब पृथ्वी पर कोई जीवन नहीं था तब न तो वहां फोटोसिंथेसिस थी और न ही ऑक्सीजन।

पृथ्वी के सबसे नजदीक के दो ग्रह हैं - मंगल और बुध। दोनों में हवा है पर कोई जीवन नहीं है। दोनों के वायुमंडल में नाईट्रोजन और कार्बन-डाईऑक्साइड है परन्तु कोई ऑक्सीजन नहीं है। शायद जब पृथ्वी बनी हो तो उसके शुरुआती दिनों में भी नाईट्रोजन और कार्बन-डाईऑक्साइड ही रही हो।
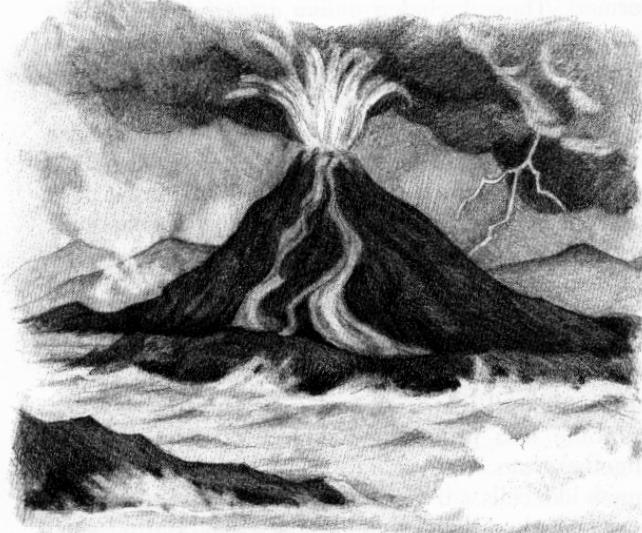
Earth before life developed
जीवन का विकास शुरू होने से पहले की पृथ्वी

बुध पर तरल पानी नहीं होगा क्योंकि वो बहुत गर्म है और मंगल बहुत ठंडा है। पृथ्वी का तापमान बिल्कुल सही है इसलिए वहां बहुत से महासागर हैं जिनसे बहुत अंतर पड़ता है। महासागरों के कारण ही पृथ्वी के वायुमंडल में पानी की नमी है। इसके अलावा शायद शुरू के दौर में मीथेन और अमोनिया जैसी गैसें भी रही हों। मीथेन के परमाणु में एक कार्बन और चार हाईड्रोजन के अणु होते हैं। मीथेन में एक नाईट्रोजन और तीन हाईड्रोजन के अणु होते हैं।

नाईट्रोजन, कार्बन-डाईऑक्साइड, पानी, मीथेन और अमोनिया सभी के छोटे परमाणु होते हैं। अगर इन छोटे परमाणुओं को बाहरी ऊर्जा मिले तो वे मिलकर बड़े परमाणु बना सकते हैं। पृथ्वी के शुरुआती दौर में बिजली और ज्वालामुखियों की ऊर्जा स्रोत्र रहे होंगे। निश्चित रूप से पृथ्वी पर ऊर्जा का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत्र सूर्य का प्रकाश रहा होगा। उसमें पराबैंगनी किरणें होती हैं जो दिखती नहीं हैं पर इतनी सशक्त होती हैं कि उनसे त्वचा जल जाती है।

1952 में एक अमरीकी वैज्ञानिक स्टैनली लायड मिलर (जन्म 1930) ने उन गैसों का नमूना लिया जो पृथ्वी के शुरू के वातावरण में रही होंगी और उनमें ऊर्जा के लिए बिजली की चिंगारी (स्पार्क) का उपयोग किया। एक सप्ताह के बाद उसने पाया कि छोटे परमाणुओं से बड़े परमाणु बन गए थे।

फिर अन्य लोगों ने भी इसी प्रकार के प्रयोग किए और उन्हें भी रोचक बड़े परमाणु मिले। इनमें अमीनो ऐंसिड्स शामिल थे जिनसे प्रोटीन्स के परमाणु बनते हैं। उनमें न्यूक्लोटाइड्स भी मिले जिनसे न्यूक्लिक ऐंसिड्स के परमाणु बनते हैं। यह संभव है कि इसी प्रकार अणुओं से प्रोफिरिन रिंग भी बन जाए।

यह यौगिक बहुत ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि प्रोटीन्स में एनजाइम्स होते हैं जो सभी जीवित चीजों में रासायनिक परिवर्तनों को नियंत्रित करते हैं। न्यूक्लिक ऐंसिड्स, कोशिका विभाजन और भौतिक गुणधर्मों के स्थानांतरण का काम करते हैं। प्रोफिरिन रिंग वे महत्वपूर्ण रासायन हैं जिनसे सांस लेना और फोटोसिंथेसिस संभव होता है।

एक अमरीकी वैज्ञानिक सिडने वाल्टर फॉक्स (जन्म 1912) ने दिखाया कि जब अमीनो ऐंसिड्स को गर्म किया जाता है तो उनसे प्रोटीन जैसे परमाणु बनते हैं। वे छोटे-छोटे गोलों में एकत्र होते हैं और देखने में बिल्कुल कोशिकाओं जैसे दिखते हैं।

यह संभव है कि पृथ्वी के शुरुआती काल में ऐसी प्रोटीन की कोशिकाएं बनी हों। पराबैंगनी किरणों की मदद से यह छोटे परमाणुओं से बनी होंगी। इनमें से कुछ में जीवन के तत्व होंगे, कुछ में नहीं। शायद जिनमें अधिक जीवन के तत्व हों, वे दूसरों को खाती हों।

यह प्रोटीन की कोशिकाएं सरल थीं और विभाजित होकर खुद की संख्या नहीं बढ़ा सकती थीं। उसमें ऐसे न्यूक्लिक ऐसिड्स भी होंगे जो अच्छी तरह से विभाजन कर सकते होंगे पर एनजाइम्स की गैरमौजूदगी में कुछ खास नहीं कर पाए होंगे।

फिर एक ऐसा समय आया जब प्रोटीन कोशिकाएं और न्यूक्लिक ऐसिड्स आपस में जुड़ने लगे। जो नई कोशिकाएं बनीं वो ज्यादा बेहतर थीं। वो विभाजन के साथ-साथ और भी कई चीजें कर सकती थीं। वे शायद आज से साढ़े तीन बिलियन वर्ष पहले बनी हों। वो प्रोकारियोट्स कहलाती हैं। यह बैक्टीरिया के पूर्वज होंगे। बैक्टीरिया आज भी जीवित हैं। प्रोकारियोट्स शायद वर्तमान में पाए जाने वाले बैक्टीरिया की तुलना में काफी सरल रहे होंगे।
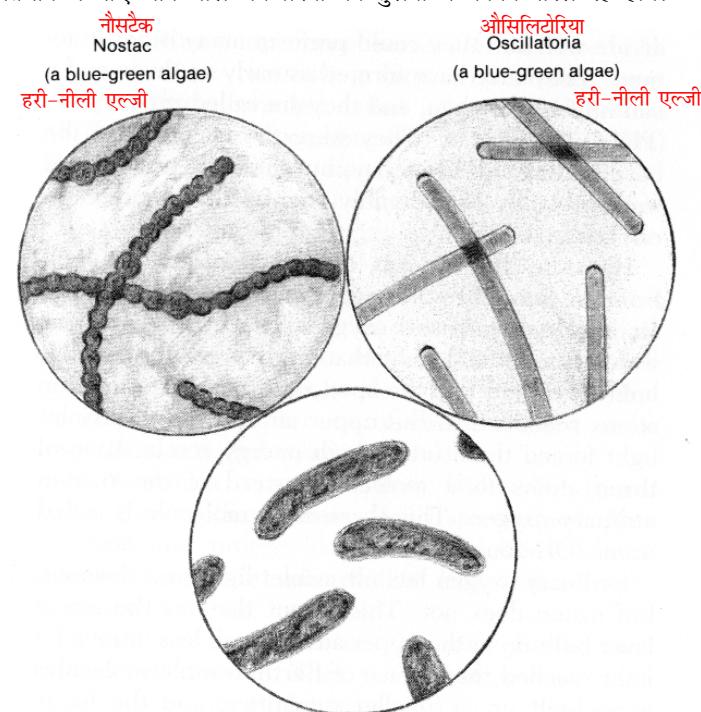
Prokaryotes **प्रोकैरियौट्स**

(microscopic views) **सूक्ष्म दृश्य**

परन्तु तब वायुमंडल लगातार बदल रहा था। सूर्य की पराबैंगनी किरणें ऊपरी वायुमंडल में पानी को हाईड्रोजन और ऑक्सीजन गैसों में विभक्त कर रही थीं। हाईड्रोजन के अणु इतने छोटे और हल्के थे कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल उन्हें रोक नहीं सका और वे ऊपर अंतिरक्षि में पलायन करने लगे। ऑक्सीजन के अणु ऊपरी वायुमंडल में ही रहे। वहां पराबैंगनी किरणों ने उन्हें दो अणुओं की बजाए तीन अणुओं के उच्च ऊर्जा वाले परमाणुओं में बदला। तीन अणुओं वाले ऑक्सीजन के परमाणुओं को ओजोन कहते हैं।

तब तक प्रोफिरिन यौगिक बन चुके थे और एक-साथ इकट्ठे हो चुके थे। वो साधारण प्रकाश की ऊर्जा को जब्ज कर सकते थे और ओजोन की परत में से आसानी से गुजर सकते थे। पहले तो प्रोफिरिन ने प्रकाश ऊर्जा का समुचित उपयोग नहीं किया परन्तु जिन्होंने उसका बेहतर इस्तेमाल किया उन्होंने पड़ोस में ही अपना भोजन बनाया और अच्छा जिए। इस प्रकार लाखों-करोड़ों वर्ष बीते और धीरे-धीरे करके प्रकाश का उपयोग और कुशल होता चला गया और फिर प्रोफिरिन कोशिकाओं ने परमाणु विकसित किए और वे बिल्कुल क्लोरोफिल जैसे विकसित होने लगे। वो धीरे-धीरे करके क्लोरोप्लास्ट बनने लगे। इसलिए आज भी बैक्टीरिया जैसी कोशिकाएं मिलती हैं जो बिल्कुल क्लोरोप्लास्ट से मिलती-जुलती हैं। वो सायनो-बैक्टीरिया कहलाती हैं और प्रोकैरियोट का दूसरा रूप हैं।

क्लोरोप्लास्ट ने पानी के परमाणुओं को तोड़ा और हाईड्रोजन के अणुओं का भोजन बनाने के लिए उपयोग किया। और ऑक्सीजन के अणु धीरे-धीरे हवा में इकट्ठे होने लगे। प्राचीन जीवन के बहुत से रूप सक्रिय ऑक्सीजन को झेल नहीं पाए और धीरे-धीरे उनमें विष घुलता गया।

पर कुछ प्रोफिरिन के समूहों ने एनजाइम्स विकसित कीं और वे ऑक्सीजन का उपयोग कर पाए उसे कार्बन और हाईड्रोजन के साथ जोड़ पाए। वे वर्तमान में पाए जाने वाले माइटोकौन्ड्रिया का एक प्राचीन रूप थे और प्रोकैरियोट का ही एक अन्य रूप थे।

दो-बिलियन वर्ष तक पृथ्वी पर प्रोकैरियोट ही जीवन का एक मात्र रूप थे।

धीरे-धीरे करके प्रोकैरियोट बड़े और जटिल कोशिकाएं बनाने लगे। वे ऐसी कोशिकाएं बनाने लगे जिसमें न्यूक्लिक ऐसिड और प्रोटीन, क्लोरोप्लास्ट और माइटोकौन्ड्रिया के साथ मिलकर आधुनिक कोशिकाओं जैसे दिखने लगे थे। उनमें से कुछ केवल माइटोकौन्ड्रिया के साथ मिलकर प्राणियों की कोशिकाएं बनीं। दोनों प्रकार यूकारीऊटस कहलाती हैं।

पिछले एक-बिलियन सालों में यूकारीऊटस ही पृथ्वी पर जीवन का

सबसे महत्वपूर्ण रूप हैं। 80 करोड़ वर्ष पहले उनसे ही बहुत कोशिकाओं वाले पौधे और जीव बने। इन्हें बहु-कोशकीय जीव कहते हैं।

आज हमारी दुनिया इन बहु-कोशकीय जीवों से भरी पड़ी है - व्हेल, बांझ के पेड़, मनुष्य, तितलियां, गुलाब आदि। पर आज भी एक-कोशकीय जीव - पौधे और प्राणी जिन्दा हैं और साथ-साथ प्रोकैरियोट भी। दरअसल ऐसे बैक्टीरिया भी हैं जो ऑक्सीजन के सम्पर्क में जीवित नहीं रह सकते हैं और जिन्होंने अपनी कोशिकाओं में कभी माइटोकौन्ड्रिया नहीं जोड़ा है।

Interdependence of Plants and Animals

पौधों और प्राणियों की अंतर-निर्भरता
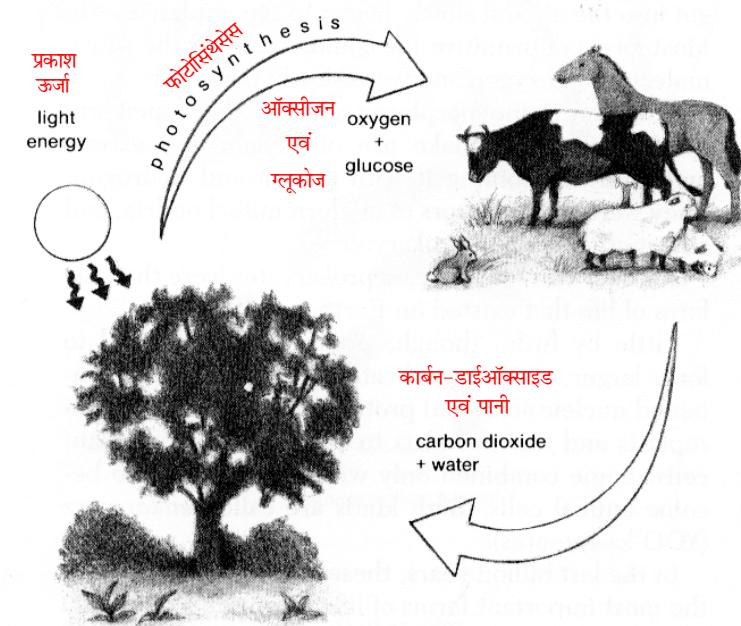
उन बैक्टीरिया को छोड़कर जो ऑक्सीजन पर जिन्दा नहीं रह सकते और वो जीव जो इन बैक्टीराया पर जिन्दा रहते हैं पृथ्वी पर बाकी समस्त जीवन फोटोसिंथेसेस पर निर्भर करता है। फोटोसिंथेसेस के बिना पृथ्वी दुबारा लौटकर करोड़ों-खरबों साल पीछे चली जाएगी जब वहां जीवन के सरलतम रूप ही जीवित थे।

इसीलिए पर्यावरणविद भरपूर कोशिश करते हैं कि पृथ्वी पर पेड़-पौधे कटे नहीं और जिन्दा रहें जिससे कि वो हमारे वायुमंडल को ऑक्सीजन की भरपाई करते रहें। पर्यावरणविद प्रदूषण को भी रोकना चाहते हैं क्योंकि उससे जीवनदायी सूर्य की धूप पृथ्वी तक नहीं पहुंच पाती है। वैज्ञानिकों को लगातार ऐसे प्रश्न पूछते रहना चाहिए और उन समस्याओं के निदान के लिए उत्तर भी खोजते रहना चाहिए। इससे पृथ्वी पर फोटोसिंथेसेस के इतिहास में कुछ अन्य अध्याय जरूर जुड़ेंगे।

अंत